संपादकीय

प्रोफेसर धनन्जय सिंह
अध्यक्ष– मनोविज्ञान विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर, (उ. प्र.)

मानव सभ्यता के विकासक्रम में कथा केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रही, बल्कि वह ज्ञान, मूल्य, अनुभव और चेतना के संवहन का सबसे प्रभावशाली साधन रही है। विशेषतः बोधकथाएँ- जो पारम्परिक नैतिक, शिक्षाप्रद और जीवनोपयोगी कथाओं के रूप में विश्व की विविध संस्कृतियों में विद्यमान रही हैं-मानव व्यक्तित्व के निर्माण में अद्वितीय भूमिका निभाती आई हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा में पंचतंत्र, जातक कथाएँ, हितोपदेश तथा लोककथाओं की समृद्ध परम्परा ने न केवल समाज को नैतिक दिशा प्रदान की, बल्कि व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास को भी गहराई से प्रभावित किया है। बोधकथाएँ केवल कोरे शब्द नहीं, बल्कि सूक्ष्म बीज हैं, जो मानव-मस्तिष्क की उर्वर भूमि पर गिरते ही वटवृक्ष का रूप ले लेती हैं।

'शोध-बोध' पत्रिका के पूर्ववर्ती अंकों में जहाँ साहित्य, भाषा, संस्कृति और भारतीय ज्ञान परम्परा के विविध आयामों को गंभीर विमर्श का विषय बनाया गया है। वहीं यह अंक बोधकथा साहित्य की उस विशिष्ट परम्परा पर केंद्रित है, जो केवल कथा-साहित्य का एक रूप नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, नैतिक निर्माण और मनोवैज्ञानिक परिष्कार की एक सशक्त विधा है। यह अंक विशेष रूप से आदरणीय शिव नारायण सिंह जी की बोधकथाओं के बहुआयामी अध्ययन को समर्पित है, जिनकी रचनाएँ भारतीय जीवन-दर्शन, लोकानुभव, नैतिकता और समकालीन सामाजिक यथार्थ का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करती हैं।

'बोध' शब्द अपने भीतर केवल ज्ञान या सूचना का अर्थ नहीं समेटे हुए है; यह चेतना, आत्मानुभूति, विवेक और जीवन की सार्थक समझ का बोधक है। स्व-बोध, विषय- बोध और साक्षी- बोध की पारम्परिक अवधारणाओं के साथ जब हम 'शोध-बोध' को जोड़ते हैं, तब यह केवल कथाओं पर शोध करने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि कथा के माध्यम से समाज, संस्कृति और मानवीय चेतना को समझने की द्वि-दिशात्मक प्रक्रिया बन जाता है। यही दृष्टि इस अंक की वैचारिक आधारभूमि है। यहाँ शोध करना केवल तथ्यों का अन्वेषण नहीं है, बल्कि यह तो उस बोध तक पहुँचाने का मार्ग है जहाँ पहुँचकर मनुष्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के पथ पर चल पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य से देखें तो बोध कथाएँ व्यक्ति के संज्ञानात्मक विकास, नैतिक तर्कशक्ति और भावनात्मक परिपक्वता में अत्यन्त प्रभावी भूमिका निभाती हैं। 'जीन पियाजे' के संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त के अनुसार बालमस्तिष्क प्रतीकों, रूपकों और सरल कथात्मक संरचनाओं के माध्यम से जटिल नैतिक अवधारणाओं को सहज रूप में ग्रहण करता है। बोधकथाओं में प्रयुक्त पशु-पक्षी, लोकपात्र और प्रतीकात्मक घटनाएँ बच्चों तथा वयस्कों दोनों के लिए मानसिक संरचनाओं (स्कीमा) का निर्माण करती हैं, जिसके माध्यम से वे जीवन के अनुभवों को व्यवस्थित और अर्थपूर्ण बनाते हैं।

'लॉरेंस कोहलबर्ग' के नैतिक विकास सिद्धान्त की दृष्टि से भी बोध कथाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें निहित नैतिक द्वंद्व-सत्य और असत्य, लोभ और त्याग, स्वार्थ और परोपकार, व्यक्ति को नैतिक निर्णय क्षमता के क्रमिक विकास की ओर प्रेरित करते हैं। कोहलबर्ग के सिद्धान्त में वर्णित नैतिक तर्कशीलता को ये बोधकथाएँ एक व्यावहारिक धरातल प्रदान करती हैं। 'अल्बर्ट बंडूरा' के सामाजिक अधिगम सिद्धान्त के अनुरूप, बोध कथाओं के पात्र आदर्श या प्रतिकूल व्यवहार के मॉडल प्रस्तुत करते हैं, जिनके परिणामों के माध्यम से पाठक या श्रोता परोक्ष पुनर्बलन द्वारा जीवनोपयोगी शिक्षाएँ ग्रहण करता है। इस प्रकार बोधकथाएँ केवल शिक्षण सामग्री नहीं, बल्कि

व्यवहार-निर्माण की जीवन्त प्रयोगशाला सिद्ध होती हैं।

भावनात्मक और सामाजिक विकास के स्तर पर भी इन कथाओं की उपयोगिता असंदिग्ध है। ईर्ष्या, करुणा, भय, साहस, लोभ, दया, न्याय और संवेदना जैसे भावों का कथा-संरचना में समावेश व्यक्ति को आत्मविश्लेषण और भावनात्मक सन्तुलन की दिशा में प्रेरित करता है। आधुनिक 'नैरेटिव थेरेपी' की दृष्टि से भी कथा व्यक्ति को अपने अनुभवों की पुनर्व्याख्या करने और जीवन के संघर्षों को अर्थपूर्ण रूप में देखने की शक्ति प्रदान करती हैं। वहीं, इन बोधकथाओं में श्रोता एवं पाठक अपना प्रतिबिम्ब देखता है, और जब वह उस पात्र को संघर्ष करते देखता है तो उसके अन्दर का आत्मविश्वास जाग उठता है, और वह कह उठता है— 'चरैवेति, चरैवेति, चरैवेति'। इस प्रकार बोधकथाएँ परम्परा और आधुनिक मनोविज्ञान के मध्य सेतु का कार्य करती हैं।

भारतीय सांस्कृतिक सन्दर्भ में बोधकथाएँ सामाजिक मूल्यों के अंतःसंचरण की प्रभावशाली विधा रही हैं। धर्म, कर्त्तव्य, सामाजिक सौहार्द, पारिवारिक उत्तरदायित्व, प्रकृति- सम्मान और मानवीय सहअस्तित्व जैसे मूल्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन कथाओं के माध्यम से सम्प्रेषित होते रहे हैं। शिव नारायण सिंह जी की बोधकथाएँ इसी परम्परा को समकालीन सन्दर्भों में पुनर्स्थापित करती हैं। उनकी कथाओं में ग्रामीण जीवन की सहजता, लोकसंस्कारों की गहराई, सामाजिक विडंबनाओं की पहचान, कर्मवाद की भारतीय अवधारणा तथा मानवीय संघर्ष की प्रेरक व्याख्या देखने को मिलती है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि शिव नारायण सिंह एक किस्सागो ही नहीं, बल्कि वे एक समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और उससे आगे एक प्रबल शिक्षाविद् के रूप में उभरकर सामने आते हैं।

इस मार्च अंक में संकलित शोध आलेख इस बहुआयामी साहित्यिक धारा का विविध दृष्टियों से विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। अविनाश शुक्ल ने शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं में पौराणिक, पारम्परिक और बौद्धिक तत्वों की त्रिवेणी का विवेचन किया है। शिखा सिंह ने कर्मवाद के आलोक में भारतीय चिंतन परम्परा से इन कथाओं के सम्बन्धों को रेखांकित किया है। अजीत कुमार कुशवाहा ने जीवन-संघर्ष और प्रेरणा के आयामों का विश्लेषण किया है, जबकि पल्लवी जालान ने इन्हें जीवन की अनुपम अभिव्यक्ति के रूप में देखा है। अरूणा कुमारी ने भारतीय कथा परम्परा की जड़ों को सुदृढ़ करने में इन कथाओं की भूमिका स्पष्ट की है। सपना सिंह ने ग्रामीण जीवन के सांस्कृतिक वैभव को उद्घाटित किया है तथा श्रद्धा त्रिपाठी ने समकालीन सामाजिक विडंबनाओं की पुनर्व्याख्या के माध्यम से इनके आधुनिक महत्त्व को रेखांकित किया है।

यह अंक इस तथ्य को स्थापित करता है कि बोध कथा साहित्य अतीत का अवशेष नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के नैतिक-सांस्कृतिक निर्माण का सक्रिय साधन है। आज जब शिक्षा, समाज और परिवार मूल्य- संकट, सांस्कृतिक विच्छेदन और मनोवैज्ञानिक असन्तुलन जैसी चुनौतियों से जूझ रहे हैं, तब बोधकथाएँ पुनः प्रासंगिक होकर हमारे सामने उपस्थित होती हैं। वे शिक्षा में नैतिकता, परामर्श में प्रतीकात्मक चिकित्सा, पालन-पोषण में मार्गदर्शन तथा सामाजिक चेतना में मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का सशक्त माध्यम बन सकती हैं।

'बोधकथा शोध संस्थान' का यह प्रयास केवल साहित्यिक अध्ययन तक सीमित नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परम्परा के उन जीवन्त स्रोतों को पुनर्परिभाषित करने का है, जो समाज को विचार, मूल्य और दिशा प्रदान करते हैं तथा हमारे भीतर के सोए हुए सत्य को जगाने का प्रयास करते हैं, तथा संघर्षों के बीच न्याय और करुणा का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

हमें विश्वास है कि यह अंक पाठकों, शोधार्थियों और अध्येताओं को बोध कथा साहित्य की मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और वैचारिक प्रासंगिकता पर नए विमर्श के लिए प्रेरित करेगा। अंततः, बोध कथाएँ हमें यह स्मरण कराती हैं कि कथा केवल कही नहीं जाती- वह समाज को गढ़ती है, चेतना को परिष्कृत करती है और मनुष्य को मनुष्य बनाती है। यही बोध, यही शोध, और यही सांस्कृतिक उत्तरदायित्व इस मार्च अंक की मूल प्रेरणा है।